श्री मद्वाल्मीकीय रामायण के उपाख्यानों का शैक्षिक महत्व

डॉ. पूनम अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
धर्मसमाज कॉलेज, अलीगढ़

भारतवर्ष की वर्तमान दुर्दशाग्रस्त शिक्षाप्रणाली को प्रतिबिम्बित करनेवाली ये पंक्तियाँ राष्ट्रकवि श्रीमैथिली शरण गुप्त की विख्यात काव्यरचना ''भारत–भारती'' के भविष्यत्खण्ड में उद्धृत की गयी हैं जिनकी पद संख्या क्रमशः 108 और 111 है। इन मर्मस्पर्शी पंक्तियों में राष्ट्रकति और प्रत्येक देशभक्त भारतीयजन दोनों के हृदय की पीड़ा झलकती है। भारत, भारतसन्तति और भारतीय शिक्षा की वर्तमान दुर्दशा को देखकर प्रत्येक स्वाभिमानी भारतवासी के मस्तिष्क में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि महान् भारतवर्ष की यह दुर्गति क्यों हुई? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहना पर्याप्त होगा कि भारतवर्ष की दुर्दशा का कारण कोई गुप्त रहस्य नहीं है। वह प्रत्यक्ष है, सर्वविविद है, जगजाहिर है। भारत की दुर्दशा का वह कारण उसकी दीर्घकालीन दासता की अवधि में राष्ट्रीय सुशिक्षा के स्थान पर अराष्ट्रीय, अभारतीय कुशिक्षाप्रणाली का आरोपण किया जाना है। इस कथन के यथार्थ अभिप्राय को यथातथ्य समझने के लिये भारतवर्ष के मध्यकालीन और ब्रिटिशकालीन इतिहास का गंभीरतापूर्वक अध्ययन का होगा। इन कालखण्डों में भी ब्रिटिशकालीन इतिहास की निम्नलिखित शैक्षिक घटनाओं तथा अभिकरणों की ओर विषेश ध्यान देना होगा क्योंकि यही तत्व भारत में विदेशी कुशिक्षाप्रणाली के बलात् आरोपण और भारतवर्ष की वर्तमान दुर्दशा के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं :

1. कम्पनी और हिन्दुओं का ईसाईकरण
2. ईसाई मिश्नरियों के आपत्तिजनक क्रियाकलाप।
3. मैकॉले और वुड की शैक्षिक नीतियाँ एवं योजनाएँ

इतिहास साक्षी है कि लॉर्ड मैकॉले ने 1835 में अपनी शिक्षानीति की घोषणा करने के बाद अपनी पिता को एक पत्र लिखा था जिसका सार यह था कि 'आज मैंने जो ऐतिहासिक निर्णय घोषित किया है, उसके फलस्वरूप मानसिक रूप में सभी हिन्दू ईसाई जैसे हो जायेंगे, यद्यपि दुर्भाग्य से मैं उसके काले

 Copyright 2016.All rights reserved.

रंग को गोरा नहीं कर सकूँगा।' मैंकॉले द्वारा अपनी शिक्षानीति के माध्यम से आरोपित मानसिक दासता स्वतन्त्र भारत में जितना प्रोत्साहन और अनुसरण प्राप्त करके स्थायित्व की ओर अग्रसर हो रही है, उतना ब्रिटिश शासनकाल में भी सुलभ एवं सम्भव नहीं था। आज लगभग सभी शासकीय स्तरों पर अँग्रेजी भाषा का बोलबाला है और हिन्दी कहनेभर के लिये शासकीय भाषा हैं सभी शिक्षासंस्थाओं में अँग्रेजी भाषा और अँग्रेजी संभ्यता का साम्राज्य हैं। भारतीय परिवार में अभारतीय संस्कारों में जड़े पाताल तक पहुँच चुकी है। सर्वाधिक आश्चर्य का विषय तो यह है कि भारत के पाश्चात्यीकरण में पुरूषों की अपेक्षा नारियाँ अधिक सक्रिय एवं आकृष्ट दिखायी पड़ती हैं। भारत सत्ता मुख्यतः भारतीय संस्कृति के विरोधी और पाश्चात्यसंस्कृति के समर्थक तत्वों के हाथ में है। लगता ही नहीं कि हम महान भारत के निवासी हैं क्यों यहाँ भारत–जैसा कुछ है ही नहीं! भारतवर्ष को इस भयावह पतनावस्था से विमुक्त करने के लिये दो ही उपाय हैं : (1) भारतीय संस्कृति के युगानुरूप जीवन्त जीवनमूल्यों को आधार बनाकर विद्यमान शिक्षाप्रणाली का भारतीयकरण करना, और (2) मैकॉले के मानसपुत्रों को सत्ताच्युत करने धर्मनिष्ठ वीर–वीरांगनाओं को सत्तासीन करना। भारतवर्ष की सच्ची स्वतन्त्रता अभी कोसों दूर है। 15 अगस्त 1947 से पहले यहाँ गोरे अँग्रेजों का शासन था 15 अगस्त 1947 के पश्चात् यहाँ काले अँग्रेज शासन कर रहे हैं। स्वतन्त्रता की दिल्ली अभी दूर है, बहुत दूर है।

अब प्रश्न उठता है कि हम जिस 'सुशिक्षा' का गुणगान कर रहे हैं, उसका स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर यही है कि वैदिककाल से ब्रिटिशकाल के वर्ष 1984 तक अनवरत रूप से अस्तित्ववान शिक्षा ही हमारी संकल्पना की सुशिक्षा है। उस सुशिक्षा का एकमात्र सर्वोपरि उद्देश्य मानव को सद्गुणसम्पन्न आर्य अर्थात् आदर्श मानव बनाना था। तैत्तिरीयोपनिशद के अनुसार वैदिक शिक्षाप्रणाली एक चतुश्स्तम्भीय प्रणाली थी जिसका भव्य भवन (1) आचार्य, (2) अन्तेवासी, (3) विद्या (पाठ्यक्रम) और (4) प्रवचन–इन चार खम्भों पर खड़ा था।

 Copyright 2016.All rights reserved.

वैदिक विद्याभवन

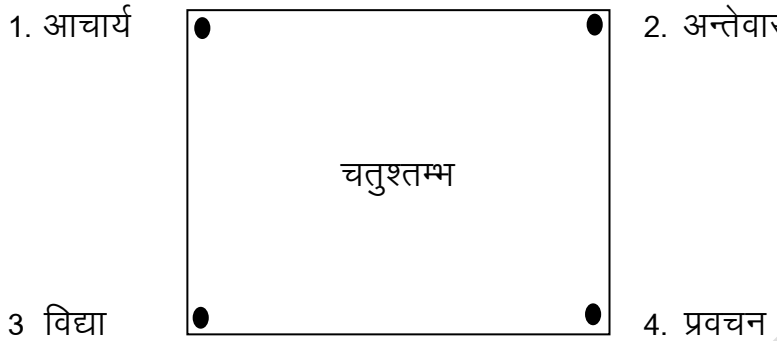

सैद्धान्तिक दृष्टि से इन चारों तत्वों में आचार्य (गुरू) का स्थान सर्वोपरि था, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से गुरू का प्रवचन अर्थात् शिक्षणविधि का महत्व अनन्य एवं असाधारण था क्योंकि वह आचार्य को सफल और सुविख्यात बनाता था, विद्या को व्यवस्थित एवं रोचक बनाता था और अन्तेवासियों (शिष्यों) को सक्रिय एवं जिज्ञासु बनाता था। आज भी विश्व की समस्त शिक्षासंस्थाओं में प्रवचन या व्याख्यान शिक्षणविधि को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। आधुनिक नवीनतानिष्ठ मनोवैज्ञानिकों ने प्रवचन या व्याख्यानविधि की कठोरतम भाषा में आलोचना और निन्दा की है और कितनी ही तथाकथित नवीन मनोवैज्ञानिक शिक्षणविधियों का आविष्कार किया, किन्तु उनकी कोई भी शिक्षणविधि अभी तक प्रवचनविधि को पराजित एवं प्रतिस्थापित करने में समक्ष नहीं हो सकी है, भविष्य में भी हो नहीं सकेगी। प्रवचनविधि वैदिक ऋशियों की देन जो ठहरी! प्रवचन और उपाख्यान के मध्य वैसा ही सम्बन्ध है जैसा शरीर और प्राण के मध्य। उपाख्यान प्रवचन को प्राणवान्, सरस और प्रेरक बनाते हैं। वामन शिवराम आप्टे द्वारा निर्मित ''संस्कृत–हिन्दी कोश'' में प्रवचन और उपाख्यान की अभिधारणाओं को निम्नप्रकार से परिभाशित किया गया है–

1. प्रवचनम् [प्र + वच् + ल्युट्] = प्रकथन, शाशण, व्याख्यान, अध्यापन।
2. उपाख्यानम् [उप + आ + ख्या + ल्युट् पक्षे ककनूच] = प्रकथन, शाशण, व्याख्यान, अध्यापन।

साहित्य दर्पण में व्याख्यान की व्याख्या इन शब्दों में की गयी है '' व्याख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः'' अर्थात् व्याख्यान किसी पूर्ववृत्त (कथा, कहानी, विषय, प्रकरण, घटना या इतिहास) की अभिव्यक्ति करना है। उपाख्यान के रूप में यही अभिव्यक्ति प्रवचन को प्राणवान्, प्रेरक और रोचक बनाती है।

 Copyright 2016.All rights reserved.

उपाख्यान के अभाव में प्रवचन एक नीरस, उबाऊ शब्दजाल बनकर रह जाता है। ऐसा निर्जीव प्रवचन न तो श्रोताओं की जिज्ञासा की तृप्त करता है, न उन्हें ज्ञानार्जन के लिये प्रेरित करता है, और न उनके मानवत्व को देवत्व में रूपान्तरित करता है।

अब यहाँ एक महत्वपूर्ण उभरकर सामने आता है– प्रस्तुत अनुसन्धाता ने अपने अध्ययन के लिये इसी विषय का चयन क्यों किया है? क्या केवल इसलिये कि व्याख्यान और उपाख्यान अध्यापन की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण विधियाँ हैं? इस प्रश्न का यह उत्तर सकारात्मक तो है, किन्तु केवल आंशिक रूप में। प्रस्तुत विषय के चयन का वास्तविक कारण अन्य ही है जो शोधकार्य प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। अनुसन्धाता एक सेवानिवृत्त वयोवृद्ध शिक्षक है। उसके अपनेजीवन के 15 वर्ष विद्यार्थी के रूप में और 35 वर्ष शिक्षक के रूप में व्यतीत किये हैं। इस अवधि में 13 वर्ष शिक्षक–प्रशिक्षण–संस्थाओं में किये गये शिक्षण के सम्मिलित हैं। छात्र और शिक्षक के रूप में वह शताधिक गुरूजनों के सम्पर्क में आया है। अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर वह अपने गुरूजनों को तीन भागों में विभक्त करना चाहेगा : (1) वे गुरूजन जो केवल जीविकोपार्जन के लिये शिक्षाक्षेत्र में आये और उनमें शिक्षक–जैसा कोई गुण नहीं था, (2) वे गुरूजनों जो सचमुच ज्ञानसम्पन्न थे, किन्तु अच्छे वक्ता नहीं थे, और (3) वे गुरूजन जो विद्या और प्रवचनकला दोनों के धनी थे, यद्यपि ऐसे गुरूजनों को प्रतिशत बहुत कम था। जो हो, वास्तविक यही है कि तृतीय वर्ग के गुरूजनों ने अपने छात्रों को जितना प्रभावित किया, उतना अन्य दो वर्गो के आचार्यों ने नही किया। यह सत्य है कि वत्सलता, विद्या और प्रवचन (व्याख्यान) ये तीनों गुण शिक्षक को लोकप्रिय बनाते है, किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इन तीनों में प्रवचन, व्याख्यान या शिक्षणकला का स्थान सर्वोपरि होता है। प्रवचनकला आचार्य को चिरस्मरणीय बना देती है। आजकल भावी गुरूजन शिक्षणप्रशिक्षकों की वास्तविकता क्या है? यही कि केवल कुछ शिक्षक–प्रशिक्षकों के अतिरिक्त अधिकांश शिक्षक–प्रशिक्षक शिक्षणविधियों को सैद्धान्तिक ज्ञान तो कराते हैं और उनमें से एक या दो विधियों को वरीयता प्रदान करने उनके आधार पर छात्राध्यापकों को अपनी पाठयोजनाएँ तैयार करना और कक्षाओं में जाकर उनका अभ्यास करना भी सिखलाते हैं। यही नहीं, वे उनकी कक्षाओं में स्वयं उपस्थित होकर अभ्यासशिक्षण का निरीक्षण भी करते हैं, किन्तु अभ्यासशिक्षण से पूर्व वे अपनी चयनित शिक्षणविधि का स्वयं प्रदर्शन (Demonstration) करने से कतराते

 Copyright 2016.All rights reserved.

हैं। यही तो रही अभ्यास शिक्षण से सम्बन्धित प्रवचन एवं प्रदर्शन की वास्तविकता। अब प्रयिशक्षणकक्षा में सिद्धानतशिक्षण (Theeory-teaching) के समय उनके प्रवचन–प्रदर्शन की वास्तविकता पर विचार कीजिए। एकाध अपवाद के अतिरिक्त लगभग सभी शिक्षणप्रशिक्षक प्रवचनविधि का प्रयोग करते हैं। जो रोचक आख्यानों, दृष्टान्तों, उद्धरणों, प्रश्नोत्तरों आदि प्रविधियों के अभाव के कारण पूर्णतः अरूचिकर, उबाऊ और निर्जीव होती हैं। अतः अनुसन्धाता की मान्यता है कि शिक्षक–प्रशिक्षक संस्थाओं में प्रवचनविधि के सजीवीकरण और प्रभावी प्रयोग पर विषेश बल दिया जाना चाहिए और यह तभी संभव है जब शिक्षक–प्रशिक्षक प्रवचन के सजीवीकरण की प्रविधियों के विशेषज्ञ एवं प्रभावी प्रयोक्ता हों। वे तभी अपने द्वारा प्रशिक्षित भावी शिक्षकों को सफल शिक्षक बनाने में समक्ष हो सकेंगे। अनुसन्धाता के विश्वास के अनुसार इस समय शिक्षकप्रशिक्षण का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष ही उसका दुर्बलतम पक्ष बन गया है। अपनी आनुशंगित प्रविधियों से सुसज्जित प्रवचनविधि शिक्षकप्रशिक्षण को इस दुर्बलता से छुटकारा दिला सकती है। उपाख्यानों में प्रवचनविधि की समस्त प्रविधियों का समावेश हो जाता है। उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ उपाख्यानों से अलंकृत प्रवचनों से भरे पड़े हैं। प्रवचन और उपाख्यान के इस अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्पश्ट करने के लिये नीचे श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का एक उपाख्यान प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे यह प्रमाणित हो जायेगा कि उपाख्यान शिक्षण को सजीव बनाने के अतिरिक्त छात्रों को विभिन्न विषयों का ज्ञान कराने, उनके चरित्र का निर्माण करने और उनके चिन्तनमनन एवं जिज्ञासा का जागृत करने के अत्यन्त प्रभावी साधन भी हैं।

1. वामन–बलि–उपाख्यान

अयोध्याधिपति दशरथ की आज्ञा से राम और लक्ष्मण को अपने साथ लेकर महामुनि विश्वामित्र ने वन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मुनिवर ने बला और अतिबला नामक विद्याद्वय राम को प्रदान कीं जिनके प्रभाव से न तो श्रम की थकान होती थी, न कोई कष्ट होता था, न कोई राक्षस आक्रमण करने की दुस्साहस करता था और न कोई महाबली में विद्याधारक को सामना कर सकता है। ब्रह्माजी की तेजस्विनी पुत्रियाँ बला और अतिबला समस्त ज्ञान, सौभाग्य एवं चातुर्य की जननी थीं। अयोध्या के प्रस्थान करने के उपरान्त महामुनि विश्वामित्र, दशरथनन्दन राम और लक्ष्मण ने वनयात्रा से प्रथम रात्रि सरयू के तट पर व्यतीत की। प्रभात होने पर उन्होंने अपने नित्यकर्म पूर्ण किये और आगे बढ़ने के

 Copyright 2016.All rights reserved.

लिये उद्यत हुए। सरयू के तट से चलकर वे गंगा–सरयू–संगम पर पहुँचे जहाँ राम के मुनियों का एक पुण्याश्रम (शिवाश्रम) देखा और मुनिवर वि वामित्र के निवेदन किया–

''भगवन्! यह किसका पवित्र आश्रम है और इसमें कौन पुरूष निवास करता है? यह हम दोनों सुनना चाहते हैं। इसके लिये हमारे मन में बड़ी उत्कण्ठा है।''

मुनि विश्वामित्र हँसते हुए बोले, ''राम! यह आश्रम पहले जिसके अधिकार में रहा है, उसका परिचय देता हूँ, सुनो।''

विद्वान पुरूष जिसे काम या कन्दर्प कहते हैं, वह पूर्वकाल में शरीरधारी था और सर्वत्र विचरण किया करता था। उन दिनों भगवान् शिव इसी आश्रम में तपस्या करते थे। एक दिन जब वे मरूद्गणों के साथ कहीं जा रहे थे, तब काम से उन पर आक्रमण कर दिया। तपस्वी शिव ने हुंकार करके उसे रोका और रोषभरी दृष्टि से उनकी ओर देखा। शिव के देखते ही काम का शरीर नष्ट हो गया। इस प्रकार देवे वर रूद्र ने उसे अंगहीन कर दिया। तभी से काम 'अनंग' नाम से विख्यात हुआ और उसने जिस प्रदेश में अपना अंग छोड़ा था, वह अंगदेश नाम से विख्यात हुआ। राम! यह उन्हीं महादेव का पुण्याश्रम है। ये तपस्यारत मुनिगण पूर्वकाल में उन्हीं शिव के धर्मपरायण शिष्य थे। आज हम इसी पवित्र आश्रम में निवास करेंगे।

पुण्याश्रम का इतिहास सुनाने के उपरान्त मुनि विश्वामित्र, रघुकुलतिलक राम और लक्ष्मण ने आश्रम में प्रवेश किया। उनके आश्रम–प्रवेश से पूर्व ही आश्रमवासी मुनियों को अपनी तपस्या से प्राप्त दिव्यदृष्टि से उनके आगमन का ज्ञान हो गया था। अतः उन्होंने तीनों अतिथियों को अर्ध्य, पाद्य और अतिथिसत्कारसामग्री अर्पित की और सत्कारपूर्वक उन्हें यथास्थान पहुँचाया। शयन से पूर्व मुनिश्रेश्ठ विश्वामित्र ने मनोहर कथाएँ सुनाकर राम और लक्ष्मण का मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धक किया।

उपाख्यान और शैक्षिक महत्व

1. समाज और राष्ट्र में गुरू का स्थान माता–पिता से भी ऊँचा था। तभी तो राजा दशरथ ने अपने प्राणप्रिय पुत्र राम और लक्ष्मण गुरूवर विश्वामित्र की सेवा के लिये उन्हें सौंप दिये थे। गुरू भी अपने शिष्यों को पुत्रवत् प्रेम करते थे और उनके सर्वांगीण विकास में अपनी सम्पूर्ण शक्ति और साधन खपा देते थे। विश्वामित्र इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

 Copyright 2016.All rights reserved.

2. वनजीवन का महत्व नगरजीवन के महत्व से बढ़कर था, यह पुण्याश्रम–जीवन से प्रमाणित होता है। प्राचीनकाल में कुल, गुरूकुल और आश्रम तीनों शिक्षा के केन्द्र थे। गुरूकुल और आश्रम दोनों किसी नदी के तट पर नगर के कोलाहल से दूर अरण्य में हुआ करते थे। सामान्य गुरूकुल औपचारिक शिक्षा के केन्द्र होते थे और आश्रम अनौपचारिक शिक्षा के। पुण्याश्रम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।
3. शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य ज्ञान के माध्यम से मानवनिर्माण करना था। ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्षज्ञान को विषेश महत्व दिया जाता था। प्रस्तुत प्रसंग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।
4. प्रस्तुत प्रसंग से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में प्रवचन शिक्षणविधि एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षणविधि थी। विश्वामित्र और राम–लक्ष्मण का संवाद प्रमाण है कि प्रवचन का प्रारम्भ शिष्य की जिज्ञासा से होता था जो प्रश्नोत्तर, संवाद और उपाख्यान के द्वारा सजीव, क्रियात्मक, आजस्वी, प्रभावी एवं ज्ञानप्रद रूप धारण करता था। प्रस्तुत प्रसंग के अनुसार प्रवचन शिक्षणविधि के पद इस प्रकार हैं : (1) जिज्ञासा, (2) प्रश्नोत्तर, (3) संवाद और (4) व्याख्यान एवं मनोरंजनात्मक कथाएँ।
5. पाठ्यक्रम की दृष्टि से, ज्ञान के विभिन्न विषयों का शिक्षण इसी मौखिक प्रवचनविधि से किया जाता था। प्रस्तुत प्रसंग से स्पष्ट है कि महामुनि विश्वामित्र ने इसी विधि से पुण्याश्रम के इतिहास का ज्ञान राम और लक्ष्मण को कराया था। उन दिनों आनुमानिक ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष ज्ञान पर विशेष बल दिया जाता था।

IJARSE

 Copyright 2016.All rights reserved.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. पाण्डुरंग बामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, (भाग 1–5), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग, लखनऊ।
3. सती ाचन्द्र चट्टोपाध्याय, भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना।
4. बल्देव उपाध्याय भारतीयदर्शनसार, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली।
5. न.कि. देवराज, भारतीयदर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
6. उमेश मिश्र, भारतीयदर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
7. बद्रीनाथ सिंह, भारतीय दर्शन, स्टूडेण्ट्स फ्रेण्डस् एण्ड कम्पनी, वाराणसी।
8. वाचस्वति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1985
9. मंगलदेव भाास्त्री, भारतीय संस्कृति का विकास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1970
10. श्रीमैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), सं. 2023 वि.

IJARSE

 Copyright 2016.All rights reserved.